लावणी : जाति केन्द्रित लोक कलाओं में स्त्री शोषण का सामाजिक स्तर - विन्यास

डॉमनीषकुमार मिश्रा .

प्रभारी - हिंदी विभाग, केअग्रवाल महाविद्यालय.एम., कल्याण (पश्चिम), महाराष्ट्र ।

ई मेल :manishmuntazir@gmail.com

दुनियां की शायद ही कोई सभ्यता या संस्कृति हो जिसमें नृत्य कला का कोई प्रावधान न रहा हो । लोक नृत्य /नाट्य परंपरा लोक में ही संरक्षित एवं विकसित होती है । इनमें समाज विशेष की सांस्कृतिक परंपराएं इत्यादि की झांकी मिलती है । ये जीवन की उत्सव्धर्मिता के प्रतीक होतेहैं । किसी समाज विशेष की नैतिकता एवं उनके सौंदर्य बोध को इन सभी कलाओं के माध्यम से आंका जा सकता है । साथ ही साथ सत्ता के सामाजिक - राजनीतिक षडयंत्रों को भी समझने में सहायक होती हैं ।

लावणी तमाशा का ही एक हिस्सा होता है । यह मुख्य रूप से ढोलक की ताल पर तेजी से गाया जाने वालीनृत्य - गीतशैली है । इसे सिर्फ स्त्रियां प्रदर्शित करती हैं । इसे प्रस्तुत करने वाली स्त्रियाँ परंपरागत रुप से नौगज़ लंबी **नव्वारी** साड़ी पहनती हैं, बालों में जूड़ा औरभरपूर गहने पहन कर मंच पर आती हैं । इन नृत्यांगनाओं के माथे पर लाल रंग की बड़ी बिंदी होती है । तमाशा यह शब्द **13वीं - 14वीं**शती से ही प्रचलन में मिलता है । **संत एकनाथ**अपने एक भारुड में लिखते भी हैं कि **- बड़े - बड़े तमाशा देखे**। पहला तमाशा **क़लागीतुरा** नाम से प्रदर्शित हुआ । यह समय महाराष्ट्र में पेशवायी का था । लावणी को तमाशा की जननी भी माना जा सकता है । **शाहिरी लावणी,** लावणी के तमाशा के रूप में गठन प्रक्रिया का एक बड़ा पड़ाव माना जा सकता है ।

लावणी का एक अर्थ यह भी निकाला जाता है कि यह शब्दों का वाक्यों में व्यवस्थित रूप से संयोजन है । तमाशा की शुरुआत कब से हुई ?इसका ठीक - ठीक जवाब देना मुश्किल है । इसे पहले **"खेल तमाशा"**के रूप में जाना जाता था । **उर्दू** और **रशियन** भाषा में तमाशा का अर्थ **मनोरंजन या अच्छा दिखना** है । कुछ शब्दकोश में इसे **अरबी** का मानते हुए इसका अर्थ **दर्शनीय दृश्य** दिया गया है । तमाशा के स्वरूप को लिखने वाले **शाहीर** कहलाते हैं जो कि एक **अरबी** शब्द ही है । कुछ विद्वानों का मानना है कि **आदिलशाही** के समय में तमाशा को फ़लने -फूलने का भरपूर मौका मिला । **गम्मत** भी एक **उर्दू शब्द** है । **गम्मत** तमाशा का ही एक हिस्सा है । यही **गम्मत** आगे चलकर **खेल तमाशा** कहलाया । **तेरहवीं शती**में मुस्लिम शासकों के साथ ही इस पद्धति /परंपरा को भी बढ़ावा मिला ।

E-ISSN: 2454-342x

कुछ विद्वानों का मानना है कि लावणी **पर्शियन भाषा** का शब्द है जो उत्तर भारत में मुस्लिम शासकों के साथ आया । **12वीं शताब्दी** में लोक नाट्य का वह स्वरूप जो त्योहारों / मेलों और यात्राओं में दिखाये जाते थे उन्हें **"गम्मत"** भी कहा जाता था । यही **"गम्मत"** आगे चलकर "खेल तमाशा" कहलाया । लोक में प्रचलित **"गोंधड़"** और **"जागरण"** जैसी कलाओं का संलयन "तमाशा" के स्वरूप निर्माण में महती भूमिका निभाता है ।

छत्रपति शिवाजी के शासन में **"वग**" के माध्यम से **होली** जैसे त्योहारों में देव आराधना की परंपरा मिलती है जो कि तमाशा में भी सम्मिलित की गयी । "गण-गवलन-लावणी" तमाशा का क्रमबद्ध हिस्सा थे **। सरदार, सोंगाड्या, नाच्या, ढोलका** जैसे नाम के कलाकार तमाशा में जुड़े । पेशवाओं के शासन काल में सिपाहियों के मनोरंजन के लिये तमाशा दिखाया जाता था । **"नायकिन का नाच"** उन सिपाहियों में विशेष लोकप्रिय था । शाहीर परशुराम फड़ पेशवाओं के समय में खूब प्रचलित था । फड़ या मंडली में उन दिनों तेरह के आस-पास कलाकार होते थे । **भागिनाजी भाड़, परशुराम सगन भाऊ, आनंद पाड़ी और राम जोशी** उस समय के अन्य मशहूर शाहीर थे । कालांतर में ऐसे कई फड़ या मंडलियाँ कोल्हापुर और पश्चिमी महाराष्ट्र में बनीं और प्रचारित-प्रसारित हुईं । तमाशा फड़ों को बकायदा मंचन के लिये खास अवसरों पर ग्राम प्रमुखों / धनी व्यापारियों द्वारा आमंत्रित किया जाता था । इस आमंत्रण को **"सुपारी देणे"** कहा जाता था ।

लावणी महाराष्ट्र से सटे मध्यप्रदेश,कर्नाटक,और गोवा जैसे राज्यों के कुछ हिस्सों में भी लोकप्रिय रही है । **"नऊवारी पायघोड़ साड़ी"** में सजी-धजी नृत्यांगनाएं ढोलकी की थाप पर यह नृत्य प्रस्तुत करती हैं । साड़ी के निचले हिस्से के ऊपर भारी-भरकम घुंघरुओं को नृत्यांगनाएं कसकर बाँध लेती । साड़ी को ये उस तरह से पहनती हैं जैसे उत्तर भारत में पुरुष धोती पहनते हैं। धोती में जिस तरह कांछ बांधी जाती है लगभग उसी तरह पर चुस्त तरीके से । इसे **कास्टा/ कासुटा / कसौटा** बाँधना भी कहा जाता है । महाराष्ट्र में इस तरह साड़ी पहनने की प्राचीन परंपरा है । खेती में काम करनेवाली स्त्रियाँ और घुड़सवारी करनेवाली स्त्रियाँ इस तरह से साड़ी पहनती रही हैं ।

(चित्र -www.shutterstock.comके सौजन्य से प्राप्त ।)

लावणी शब्द को लेकर भी कई विचार सामने आते हैं । कुछ लोग यह मानते हैं कि लावणी शब्द लावण्य / सौंदर्य से संबंधित है ।एक अन्य विचार के अनुसार लावणी शब्द का संबंध मराठी के **लावन** या **लागवन** से जुड़ा हुआ है ।ये शब्द कृषि कार्य से जुड़े हुए हैं ।संगीत ,नृत्य और गायन की क्रमबद्धता वैसी ही है जैसे खेत में धान की बेहन डालने वाले किसान की दक्षता एवं निपुणता ।

लावणी मुख्य रूप से दो प्रकार की मानी जाती है 1- **निर्गुणियाँ** लावणी और 2- **शृंगारी** लावणी । निर्गुणियाँ दार्शनिक एवं धार्मिक प्रविति की तो शृंगारी हास्य ,मनोरंजन एवं शृंगार से युक्त होती है । पति-पत्नी के प्रेम ,नोंक-झोंक,प्रेमी-प्रेमिका और समाज इत्यादि इन गीतों के विषय होते हैं । लावणी को महाराष्ट्र की कुछ जतियों की स्त्रियों द्वारा ही प्रस्तुत किया जाता था । ये जातियाँ थीं - **कोल्हाटी,महार,मांग** इत्यादि ।

16वीं श ती के संत साहित्य में भी तमाशासंबंधीउल्लेख दिखाई पड़ते हैं । **"गौड़नी"**,**"भारूड़"**,**"विराड्या"**जैसी लोक शैलियों में भी लावणी के रंग दिखाई पड़ते हैं । महाराष्ट्र में **शाहिर** अपने पदों के माध्यम से **समाज प्रबोधन** और **लोकरंजन** की मूल भावना के साथ साहित्य रहते थे । लेकिन इन्होंने लावणी की एक नई पद्धति का विकास किया । लावणी का मूल भाव **शृंगार** है । इन शाहीरो ने जो लावणी लिखी उसमें तत्कालीन समाज ,राजनीतिक जीवन,धार्मिक व सांस्कृतिक स्थिति का सुंदर चित्रण है । पारंपरिक लावणीकारों में **परशुराम,राम जोशी,सगन भाऊ,प्रभाकर,अनंत फंदी और होनाजी बाड़**प्रमुख नामों में से एक हैं । आधुनिक लावणी के भी कई प्रकार विकसित हुए । जैसे कि **जुन्नरी लावणी,वगाची लावणी ,बालेघाटी लावणी ,हौद्याची लावणी**और **धावती लावणी** । आधुनिक लावणी कारों में**शांताबाई शेड़के ,ज्ञानोबा उत्पाद, जगदीश खेबुडकर, रविराज सोनार,इलाही जमादार** और **चंद्रकांत जोशी** जैसे नाम प्रमुख रहे ।

पेशवाओं के समय **अंधारातली लावणी**अर्थात अंधेरी की लावणी का भी प्रचलन था । ऐसे लावणी की समाज के अंतिम पायदान की वंचित स्त्रियों द्वारा दी जाती थी जो कि समाज में वेश्या ही मानी जाती थी । इन्हें **बतीक** कहा जाता था । यहां नृत्यांगना एक वस्तु ही समझी जाती थी । उन दिनों स्त्रियों के दो वर्ग प्रचलित थे । "**घरंदाज़"** और "**नाचीज**"या **बतीक** । तमाशा या लावणी से जुड़ी स्त्रियाँ "**नाचीज**"या **बतीक**श्रेणी में ही आ तीथीं । सिनेमा के आगमन के साथ लोक कलाओं पर काफी प्रभाव पड़ा । सिनेमा ने अपने आप को उन से अधिक श्रेष्ठ साबित किया । परिणाम स्वरूप लोक कलाओं का व्याकरण बदलने लगा ।

तमाशा सामाजिक स्तर-विन्यास के आधार पर मनोरंजन की कलात्मक यात्रा मानी जा सकती है । **ढोलकी फड़** और **संगीतबारी**तमाशा के ही दो अलग रूप माने जा सकते हैं । **ढोलकी फड़गन- गवलन- बटावनी - रंगबाजी और वग** की प्रस्तुति से जुड़ीथी । **वग** में **व्यवस्था पर व्यंग** को कलात्मक तरीके से प्रस्तुत किया जाता था । जबकि **संगीतबारी** में समाज विशेष की सुंदर स्त्रियां पैसे वाले लोगों के सामने नृत्य प्रस्तुत करती ,जहां पर छेड़खानी इत्यादि पैसे के सामने एक स्वीकृत सा चलन बन गया था ।इन औरतों के लिए शादी की अनुमति नहीं थी । वह पर पुरुषों से संबंध बना सकती थी परंतु शादी नहीं कर

सकती थी । ये स्त्रियां अधिक़तर**माली कोल्हाटी,भाटूकोल्हाटी** और **कलावट** जातियों से होती । **कलावट**एक मुस्लिम जाति थी।

पारंपरिक महाराष्ट्रीयन तमाशा मूल रूप से दो भागों में बटा था । **खानदेशी तमाशा** (धुले और जलगांव का इलाका) तथा **वायीदेशतमाशा**(मराठवाड़ा और विदर्भका इलाका) । खानदेशी तमाशा के प्रारंभ में सात गणों का गीत होता और इसके संवाद अधिकतरगद्यात्मक होते । कई बार इनकी भाषा हिंदी भी होती । **वायीदेश तमाशा** में सात की जगह पाँच ही गणों का गीत होता । इनकी संगीत शैली खानदेशी शैली की अपेक्षा अधिक व्यवस्थित थी । पश्चिमी महाराष्ट्र में यह अधिक प्रचलित थी ।

संगीतबारी की लावणी ने अपने आधुनिक रूप को विकसित करते हुए समाज प्रबोधन की जगह मनोरंजन को ही अपने केंद्र में प्रतिष्ठित किया । लावणी अब कला केंद्रों और थियेटर में प्रस्तुत की जाने लगी । महाराष्ट्र के सनसवाडी,मोड़निंब, सोलापुर,बार्शी,लोडगे, सांगली, सातारा तथा कोल्हापुर में ऐसे केंद्र देखे जा सकते थे। आगे चलकर फ़िल्मों में लावणी के उपयोग की परंपरा शुरू हुई । फिल्मों के लिए कई लावणीकारों ने लेखन का काम किया । **जगदीश खेबुडकर , ना . धो . महानो रा दिकानी** और **ग .दी. माड्गुड़क़र**फिल्मों के लिए लावणी लिखते रहे । लावणी की **सीडी / डीवीडी /एल्बम** आने लगी जो कि काफी लोकप्रिय हुई । आधुनिक लावणी के स्वरूप निर्माण में बा पूराव पट्ठे का अहम योगदान रहा है । पुरानी लावणी में मूल रूप से जो वाद्ययंत्र उपयोग में लाए जाते थे उनमें **ढोलकी,तुड्तुड़े,हारमोनियम** और **तबला** प्रमुख रहे ।

तमाशा लोक मनोरंजन के एक प्रकार के रूप में 16वीं शती में अधिक लोकप्रिय हुआ । पेशवाओं के शासन में इन औरतों ने दरबारों में प्रस्तुति देनी शुरू की । लावणी नृत्य के माध्यम से औरतों की इच्छाओं,सपनों,कामुकता इत्यादि को एक तरफ कलात्मक अभिव्यक्ति का मौका मिला तो दूसरी तरफ**समाज के हाशिये पर पड़ी इन छोटी जातियों की स्त्रियों के सामाजिक शोषण की स्वीकृति का एक सत्ता केन्द्रित षड्यंत्र भी बख़ूबी मान्य सामाजिक प्रथा के रूप में प्रचलन में रहा ।** इन समाजों की स्त्रियों के लिये यह अनिवार्य कर दिया गया कि वे यही काम करेंगी । इस तरह उन्हें पेशेवर और बाज़ारू बनाया गया । ये स्त्रियाँ वस्तु के रूप में अपने शारीरिक सौंदर्य एवं कलात्मक गुणों के आधार पर पेशवा शासकों द्वारा संरक्षित रहीं । समाज में यह स्वीकार किया गया कि इस कला की अधिकारणी यही जातियाँ रहेंगी । यह स्त्री शोषण और गुलामी की एक नई पटकथा थी जो तत्कालीन शासकों द्वारा लिखा गया । सिनेमा के आगमन ने तमाशा के व्याकरण को बदल दिया । **"जय मल्हार"** और **"राम जोशी"** जैसी तमाशा केन्द्रित मराठी फिल्में इन स्त्रियों के जीवन संघर्ष को बड़ी सूक्ष्मता और बेबाक़ी से दिखाती हैं । **"पिंजरा"** और **"नटरंग"** भी ऐसी ही मराठी फिल्में हैं । हाल-फ़िलहाल की कई हिंदी फ़िल्मों में लावणी नृत्य को फ़िलमाया गया है । लेकिन सिने सुंदरियों के ऊपर जिस ग्लैमर के साथ इसे फ़िलमाया गया वह वास्तविक लावणी कलाकारों की सच्ची तस्वीर नहीं पेश करती । कैटरीना कैफ पर फ़िलमाया गया **"चिकनी चमेली"**, विद्या बालन पर **"माला जाऊ दे"** और ऐसे ही कई अन्य गीत उदाहरण के लिये गिनाये जा सकते हैं ।

एक बात यह भी समझनी होगी कि लावणी या तमाशा की प्रस्तुति एवं प्रकार के पीछे छिपा हुआ एक अर्थशास्त्र भी काम करता था जो कि इसके नियामक के रूप में भी काम करता था । लावणी देखने वालों की रुचि एवं उनकी आर्थिक दशा ने इसके स्वरूप और पद्धति को निर्मित और नियंत्रित किया । **संगीतबारी** की प्रस्तुति के लिए नृत्यांगनाओं को अपने सामने धनी व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ती थी । तो दूसरी तरफ फड़ लावणी की सुंदर स्त्रियों को कई बार फड़ के प्रवेश द्वार पर खड़ा रहना पड़ता ताकि उनके रूप सौंदर्य पर मोहित हो अधिक से अधिक लोग टिकट लेकर तमाशा देखने आयें । इसमें कोई शक नहीं कि थियेटर और सिनेमा के क्रमिक विकास ने धीरे-धीरे इन लोक कलाओं की लोकप्रियता में कमी लायी । मनोरंजन के आधुनिक साधनों ने पुराने साधनों की रफ़्तार को शिथिल किया । विष्णूदास भावे ने पहले मराठी नाटक का मंचन किया ।थियेटर अपने समय को जिस कलात्मक खूबसूरती के साथ प्रस्तुत कर सकता था वह अवकाश और औज़ार तमाशा या लावणी के पास नहीं था । इसी का परिणाम था कि तमाशा **फड़** / मंडलियों ने अपनी परंपरा को बदला । 20वीं शताब्दी की इन मंडलियों में हिंदी-मराठी सिनेमायी गानों पर भी नृत्य इत्यादि होने लगा ।"आईटम डांस" की फ़िल्मी परिपाटी में लावणी भी उपयोग में लायी जाने लगी । इस फ़िल्मी चकाचौंध वाली लावणी में जाति केन्द्रित उन स्त्रियों का कोई चित्र नहीं उभरता जो पीढ़ियों से अपनी नृत्य कला को सिंचित करती आ रही हैं, वो भी सत्ता और समाज के तमाम षडयंत्रों के बीच । सिनेमा ने इस कला को जाति के केंद्र से मुक्त किया । **हंसा वाड़कर** और **संध्या** जैसी उच्च जाति की स्त्रियाँ मराठी सिनेमा में लावणी का चेहरा बन गईं लेकिन लावणी को पीढ़ियों से संजोने वाली कोल्हाटी , महार और मांग जाति की स्त्रियों के लिये जीविकोपार्जन का संकट खड़ा कर दिया ।

पेशवायी खत्म होने के बाद संरक्षित कलाकारों के लिए जरूरी हो गया कि वे अपने जीविकोपार्जन के लिए आम जनता के बीच अपनी कला का मंचन करें । बहुत से कलाकारों ने यह शुरू भी की किया । इनमें **पठ्ठे बापूराव, उमाबाबू सवलजकर,भाऊ पक्कड़ ,हीरु - सानू,शिवासभा, भाऊ बापू नारायणगांवकर,रमा कुंभार,वर्धानगाड़कर ,नाईककमरीकर,बापूराव कुपवाड़कर,सावला औरंगापुरकर ,तुकाराम खेडकर** इत्यादि प्रमुख रहे । सामान्य जनता के बीच तमाशा को अधिक लोकप्रिय बनाने के लिए दोअर्थी संवादों की परंपरा शुरू हुई । इन्हें कहने के लिए नए चरित्र का निर्माण हुआ **"सोंगाड़या"** ऐसा ही चरित्र था । कई कलाकार इस चरित्र के साथ लोकप्रिय हुए । **दादू इंदूरीकर,कालू -बालू, दत्ता माहडिक** इत्यादि ऐसे ही कलाकार थे । इन तमाशा मंडलियों को **"खानदानी तमाशा"** भी कहा जाता था।

समाज की उच्च जातियों ने तमाशा से जुड़े लोगों को उपेक्षित दृष्टि से देखा । उनके लिये तमाशा देखना अपराध जैसा था । स्त्रियों और बच्चों को इससे दूर रखा जाता था । लेकिन मेलोंइत्यादि में इनकी लोकप्रियता बढ़ती चली गई । इनकी आर्थिक स्थिति भी बेहतर हुई । बैल गाड़ियों की जगहट्रकों का उपयोग होने लगा । मंडली मालिक अपनी मंडली के प्रचार-प्रसार के लिए जीप उपयोग में लाया करते थे । मंडली मालिक कार तक रखनेलगे थे । मंडलियों की आर्थिक स्थिति बेहतर होने के साथ-साथ उन्होने वाद्य यंत्रों में भी बदलाव किये । तमाशा दिखाये जाने वाले स्थलों को सुविधा पूर्ण बनाया गया । फिल्मी गानों की लोकप्रियता को भुनाने के लिए उन्हें भी शामिल किया जाने लगा । साज-सज्जा पर खर्च अधिक किया जाने लगा । यह तमाशा को लेकर नए बदलाव थे ।

पुराने तमाशा में भाषा काव्यात्मक अधिक होती थी लेकिन आधुनिक तमाशा (वगनाट्य) में यह भाषा अधिक गद्यात्मक हो गई । इसके साथ -साथ आधुनिक वाद्य यंत्र, साउंड सिस्टम इत्यादिमें नई तकनीक का भरपूर उपयोग किया गया । सन 1950 तक तमाशा में "**सरदार**" की अहम भूमिका होती लेकिन 1950 के बाद यह परंपरा लगभग खत्म हो गई । **"मौसी"** जैसे नएस्त्री चरित्र सामने आने लगे । मूक सिनेमा के दौर ने तमाशा को इतना प्रभावित नहीं किया, लेकिन इन दिनों के **"कॉस्ट्यूम"** से तमाशा जरूर प्रभावित हुआ । सन 1932 के बाद बोलती फिल्मों का दौर शुरू हुआ । मनोरंजन के क्षेत्र में इन बोलती फिल्मों ने एक क्रांति ला दी । इसका प्रभाव तमाशा पर भी पड़ा और पारंपरिक तमाशा ने अपने आप को परिवर्तित किया ।

अब तमाशा में लोकप्रिय सिनेमा गीत गाना स्वीकार कर लिया गया । सिनेमा के गानों को गाना ये तमाशा का हिस्सा हो गया । पुरानी स्वरूप के साथ सिनेमा में नायकों के जो डायलॉग / संवाद प्रचलित थे उन्हें नकल के साथ तमाशा में भी प्रस्तुत किया जाने लगा । इस तरह तमाशा का एक नया स्वरूप ही विकसित हो गया। तमाशा की परंपरा के अनुसार नये कलाकार, पुराने कलाकारों से सीखते हुए अपनी पूरीकलात्मक आजादी के साथ काम करते थे । लेकिन बदली हुई नई परंपरा में उन्हें फड़ मालिक के निर्देशानुसार काम करना पड़ता था । तमाशा में भी अब फिल्मों की तर्ज पर निर्देशन महत्वपूर्ण होने लगा

श्री बालासाहेब खेरजब मुख्यमंत्री रहे तब उन्होंने तमाशा के प्रदर्शन पर बंदी लगा दी थी । उन्होंने ऐसा उन शिकायतों के आधार पर किया जो तमाशा में बढ़ती अश्लीलता से संबंधित थी । कुछ समय बाद **आबासाहेब मजुमदार, बापूसाहेब जिंटीकर, पोपटलाल शाह, अहमद सेठ तांबे** इत्यादि ने सरकार से अनुरोध किया कि यह बंदी हटा ली जाये । अप्रैल 1949 में तमाशा कलाकारों की एक महासभा भी हुई जिसमें सरकार से बंदी उठाने की विनंती की गई । इसके बादही **"तमाशा सुधार समिति"** का मुख्यमंत्री ने गठन किया । जिसके अध्यक्ष **दत्तो वामन पोतदार** थे । इसके अन्य सदस्यों में **एन.आर.पाठक, मामा वारेकर**तथा अन्य कई लोग शामिल थे । इसके बाद ही कुछ शर्तों के साथ सरकार ने यह बंदी खत्म की । तत्कालीन गृह मंत्री **श्री मोरारजी देसाई** ने इस बंदी को खत्म कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ।

सरकार द्वारा जो शर्तें लगाई गयीं उनमें **दो अर्थी संवादों पररोक,अश्लील संवादों पररोक**,**महिला कलाकारों को पैसे इत्यादि देने के बहाने दर्शकों द्वारा छूने पर रोक**जैसी अनेक बातें शामिल थी । तमाशा की पटकथा को **सेंसर की अनुमति** भी लेनी पड़ती थी । बकायदा उन्हें **प्रमाणपत्र** मिलता । उसके बाद मंचन संभव हो पाता । जिस इलाके में तमाशा दिखाना होता वहां के तहसीलदार और स्थानीय पुलिस की अनुमति भी अनिवार्य रूप से लेनी पड़ती । इस तरह सन 1953 के बाद तमाशा सरकारी नियमों के अधीन हो गया । फिल्मों की तरह तमाशा मंडलियों में भी संगीत, नृत्य, साज –सज्जा, पटकथा इत्यादि पर काम होने लगा **। शाहिर बापुराव पुणेकर** जैसे लोगों ने इसी नई परंपरा में काम किया ।
तमाशा मनोरंजन के एक प्रकार के रूप में 16 वीं सदी में अपनी जगह बनाता है और आजाद भारत में एक व्यापार के रूप में बदल जाता है । महाराष्ट्र की कई छोटी जातियों में कोल्हाटी जाति की महिलाओं के लिए यही पेशा अपनाना लगभग अनिवार्य था । सन 1994 में प्रकाशित **"कोल्हाट्याच पोर"** नामक

किशोर काले की आत्मकथा में इस समाज की औरतों के दर्द व शोषण को आसानी से समझा जा सकता है ।

तमाशा मूल रूप से **पर्शियन भाषा** का शब्द माना है जिसका अर्थ मजा या मनोरंजन है । कुछ लोगों का मानना है कि मुगल शासन में य ह विकसित हुआ तो कुछ इसका मूल संस्कृत के **प्रहसन** में देखते हैं । मुगल और मराठा सैनिकों के मनोरंजन के लिए इसका उपयोग होता रहा है । तमाशा मंडलियाँ मुख्य रूप से दो तरह की हो तीं । **संगीत बारी** और **ढोलकी बारी** । संगीत बारी गाने और नृत्य में निपुण होती । ढोलकी बारी नाट्य प्रस्तुति में निपुण होती । इन्हें **वग**कहा जाता । संगीत बारी में 5-6 स्त्रियां किसी वाद्य यंत्र पर नृत्य प्रस्तुत करती । यह **कोल्हाटी समाज** का व्यवसाय बन गया था । महाराष्ट्र में कोल्हाटी समाज की स्त्रियों को लावणी प्रस्तुतीकरण का पूरा सामाजिक अधिकार था ।

सन 1960 में **दलित आंदोलन /दलित विमर्श** का महत्वपूर्ण दौर महाराष्ट्र से शुरू हुआ । हाशिये का वंचित और शोषित समाज इस आंदोलन के माध्यम से मुखर हुआ । संगीत ,कला साहित्य और अन्य माध्यमों से अपनी -अपनी पीड़ा को इन्होंने सामने लाया । **दया पवार –बलूटा, पी. ई.सोनकांबले -आठवनीचे पंछी, माधव कोंडविलकर - मुकाम पोस्ट देवाचेगोठने , बेबी कांबड़े-जिना आमचा, मल्लिका द्सात - उद्ध्वस्त वयाचा माला,शाम कुमार लिंबाले - अक्करमाशी और किशोर शांताबाई काले –कोल्हाट्याच पोर**इसी पीड़ा का साहित्य है ।[21]अपमान और शोषण जो अनुभव उन्होंने साझा किया वह पीड़ा का महाकाव्य ही कहा जा सकता है । कोल्हाटी समाज की स्त्रियों को पंचायतों द्वारा विवाह का अधिकार नहीं था । उन्हें एक गांव से दूसरे गांव में घूमते हुए तमाशा मंड लि यों के साथ अपने कार्यक्रम करने पड़ते थे । ऐसे में सामाजिक रूप से अनैतिक संबंध और इन संबंधों से पैदा हुए बच्चों की परवरिश एक कठिन कार्य होता था। स्त्रियों के शोषण की यह सामाजिक व्यवस्था विचित्र थी । दलित विमर्श के माध्यम से औरतों की पीड़ा को प्रस्तुत करने का कार्य दलित साहित्यकारों ने किया ।

आज इंटरनेट और सिनेमा जैसे सशक्त माध्यमों के बीच लावणी के मूल स्वरूप को बचाना एक बड़ी चुनौती है । कोल्हाटी , महार और मांग जाति की लावणी से जुड़ी स्त्रियों को उनके परंपरागत व्यवसाय से जोड़कर रखते हुए भी, उन्हें सामाजिक जीवन में सम्मान से जीने का अधिकार भी देना होगा । ये चुनौतियाँ आसान नहीं लेकिन असंभव नहीं । लोक कलाओं एवं कलाकारों को संरक्षण देना हमारा सामाजिक एवं मानवीय कर्तव्य है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. Contextualizing power politics of Tamasha Art and Female Suffering in Dalit Autobiography - Roshan Morrve, CentralUniversity of Gujarat. Asian Journal of Humanity, Art and Literature, Volume 1, No. 02 (2004)
2. A Study of Folk Dance of Maharashtra- Ramanjit Kaur Bajwa & Rupali Yadav. South Asian Anthropologist 2014, 14(1): 25-33 Page no.
3. Role of Folk Media in Nation Building - shailendra Kumar, Lucknow University. Voice of Research Vol. 01, issue - 02, June 2012.

4. Breaking the Tradition: Gulab Bai - The First women in Folk Theatre of Uttar Pradesh-Nautanki - Anita Gupta. New Man International Journal of Multidisciplinary studies (ISSN: 2348-1390) Vol. 03 issue 11. November 2016.
5. Folk Songs in Western Maharashtra - Minor Research Project (UGC) Of Prof. Shekhar Mrinalini Vasant. Bharatratna Dr. Babasaheb Ambedkar College Aundh, Pune- 411007, February 2013. {Got some part through internet.}
6. Acculturation of the Folk Dances: Special reference to Maharashtra - Anil Shrirang Awad. The Criterion an International Journal in English. ISSN - 0976-8165. Vol. 05 Issue - I (February 2014).
7. Traditional Folk Media in Rural Maharashtra: An Analytical Study - Rajendra Rambhau Chapke. Thesis submitted for PhD Degree at Indian Agricultural Research Institute, New Delhi. August 2011.
8. Lavani Folk Artists Dancing for Survival. - Anam Mittra
9. Tamasha and Other Folk Forms of India: Chapter - VII, Thesis on Shodhganga.
10. महाराष्ट्रातील लावणी : संगीतबारी परंपरा ते आधुनिक लावणी - डॉ. चन्द्रकान्त जोशी , अहमदनगर कालेज, अहमदनगर । यू.जी.सी. लघु शोध प्रबंध । { इंटरनेट पर उपलब्ध कुछ हिस्से । }